UGC Approved
Journal No: 47663

ISSN : 2348 – 4969
IF : 7.8902(2017)

KAAV

International Journal of Economics, Commerce and Business Management

Approved by UGC in Multidisciplinary category

Volume - 5 Issue - 1 Jan - Mar 2018

KAAV PUBLICATIONS

A Refereed Blind Peer Review Quarterly E - Journal

KAAV INTERNATIONAL JOURNAL OF ECONOMICS, COMMERCE & BUSINESS MANAGEMENT
A REFEREED BLIND PEER REVIEW QUARTERLY JOURNAL
KIJECBM/ JAN-MAR (2018)/VOL-5/ISS-1/A92 PAGE NO.545-548
ISSN: 2348-4969 IMPACT FACTOR (2017) – 7.8902
UGC APPROVED JOURNAL NO. 47663
WWW.KAAVPUBLICATIONS.ORG

भारतीय संस्कृति और नारी सशक्तिकरण (विश्व परिदृश्य में)

[1]डॉ. संगीता जगताप
[1]विभागाध्यक्षा, कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय
चिखलदरा, जिला - अमरावती (महाराष्ट्र)

सारांश
संस्कृति को एक ऐसी जटिल समग्रता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसके अन्तरगत एक समाज के आदर्श, धर्म, भाषा, विचार, जनरीतियाँ, प्रथाएँ, रूढ़ियों आदि सामाजिक नियमों के साथ ही फैशन, विज्ञान, भोजन, निवास आदि आते हैं। सामान्य रूप से संस्कृति के दो पक्ष होते है – 1. भौतिक और 2. अभौतिक। संस्कृति के भौतिक पक्ष को हम सभ्यता कहते है। यहाँ पर सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि ये दोनों पर एक दूसरे से अलग होते हुए एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए 'सादा जीवन उच्च विचार' की धारणा व्यक्ति की भौतिक आवश्यकताओं को कम कर देती है। इसी प्रकार सेल्फ स्टार्टर के आविष्कार के बाद महिलाओं में भी कार लोकप्रिय हो गई।

एक व्यक्ति के कार्य, विचार, नियम आदि उसके सीखे हुए व्यवहार होते हैं। अर्थात् संस्कृति एक सीखा हुआ व्यवहार है, जिसे वह आगे आनेवाली पीढ़ी को हस्तान्तरित कर देता है। संस्कृति के द्वारा व्यक्ति अपने समाज से अनुकूलन करता है तथा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। संस्कृति में सामाजिकता का गुण होता है तथा यह समाज और उस समाज के व्यक्तियों के लिए आदर्श होती है। संस्कृति मानवोपरि होती है, इसीलिए इसमें सामाजिक बाध्यता का गुण होता हौ। संस्कृति की एक अन्य विशेषता यह है कि प्रत्येक समाज की अपनी संस्कृति होती है तथा एक समाज की संस्कृति दूसरे समाज की संस्कृति से भिन्न होती है। एक समाज की संस्कृति उस समाज के व्यक्तियों के लिए आदर्श होने के साथ ही साथ उपयोगी भी होती है। उदाहरण के लिये भारतीय व्यक्तियों के लिए भारतीय संस्कृति उपयोगी है, जबकि अमरीकी संस्कृति अमरीका के लोगों के लिए।

एक समाज की संस्कृति अन्य समाजों की संस्कृतियों से प्रभावित होती है। डॉ. परशुराम शुक्ल के शब्दों में, ''अत्यन्त दुर्लभ स्थानों पर बसी हुई जनजातियों के अतिरिक्त विश्व में शायद ही कहीं विशुद्ध संस्कृति मिल जाए। एक संस्कृति दूसरी संस्कृति से प्रभावित होती है और इनके मध्य सदैव गुणों का आदान–प्रदान चलता है।''[1]

अब आइये भारतीय संस्कृति की चर्चा की जाये। भारतीय संस्कृति की गणना विश्व की सर्वाधिक प्राचीन और विकसित संस्कृतियों में की जाती है। विश्व के अधिकांश भागों के लोगों को जिस समय तन ढकना नहीं आता था, उस समय भारत के मनीषी, ज्योतिष के आधार पर ग्रहों की दूरियाँ नाप रहे थे और इनके व्यक्ति तथा धरती पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन कर रहे थे। भारतीय दर्शन, योग, आध्यात्म आदि इस महानता और उपयोगिता को सम्पूर्ण विश्व ने स्वीकार कर लिया है। 'अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस' इसका प्रमाण है।

भारतीय संस्कृति धर्म प्रधान है। यहाँ पर धर्म का प्रयोग अंग्रेजी के रिलिजॅन के रूप में नही समझा जाना चाहिये। भारतीय संस्कृति में धर्म को कर्म के पर्याय के रूप में लिया गया है। उदाहरण के लिये पित्र धर्म का तात्पर्य पिता के आदर्श कर्मो से है। इसी प्रकार पुत्र धर्म का तात्पर्य एक पुत्र के आदर्श कर्मो से है।

भारतीय संस्कृति के मूल स्रोतों में वेदों, स्मृतियों, पुराणों, अन्य धार्मिक ग्रन्थों आदि के साथ ही मनीशियों के आचरण को भी सम्मिलित किया जा सकता है। सामाजिक संतुलन और व्यवस्था बनाये रखने में इसका अत्यन्त प्राचीन काल से महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वर्ण व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था, पुरूषार्थ, संस्कार, पंच ऋण और पंच महायज्ञ, पुनर्जन्म का सिद्धान्त, गीता का कर्म सिद्धान्त आदि भारतीय संस्कृति के अभूतपूर्व अंग है। कर्म के सिद्धान्त को स्पष्ट

Copyright © 2017 Published by kaav publications. All rights reserved www.kaavpublications.org

करते हुए डॉ. शुक्ल कहते हैं, ''कर्म के अन्तरगत भौतिक क्रियाओं के साथ ही मानसिक, भावात्मक, आध्यात्मिक आदि क्रियायें भी आती है। इनमें से प्रत्येक कर्म का फल, व्यक्ति को अपने वर्तमान जीवन में अथवा अगले जन्मों में प्राप्त होता है। यहाँ पर विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि कर्म का फल कभी नष्ट नहीं होता है और बिना कर्म किये कोई फल प्राप्त नहीं होता है, किन्तु परिवार के एक व्यक्ति के द्वारा किये गये कर्म का फल, उसी परिवार के दूसरे व्यक्ति को प्राप्त हो सकता है। उदाहरण के लिये पिता के कर्मो का फल उसके पुत्र को अथवा पति के कर्मो का फल उसकी पत्नी को प्राप्त हो सकता है।

कर्म और कर्मफल का प्रभाव व्यक्ति के विचारों, भावनाओं, प्रवृत्तियों आदि पर पड़ता है। अर्थात् कर्म व्यक्ति के व्यक्तित्व के अंग बन जाते हैं और जीवन भर उस पर प्रभाव डालते रहते है। हिन्दू धर्मग्रन्थों के अनुसार व्यक्ति की मृत्यु के बाद भी कर्म और कर्मफल व्यक्ति के साथ रहते हैं तथा अगले जन्मों में प्रभाव डालते हैं। यही से आत्मा की अमरता और पुनर्जन्म के सिद्धान्त का जन्म होता है।''[2]

कर्म के सिद्धान्त को भारतीय संस्कृति में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इसके महत्व को इसी बात से समझा जा सकता है कि हिन्दू धर्म में व्याप्त आडम्बरों के विरोधस्वरूप जन्म लेनेवाले जैन धर्म और बौद्ध धर्म ने भी कर्म के महत्व को स्वीकार किया है।

भारतीय संस्कृति अपनी उपयोगिता के कारण एक लम्बे समय तक महत्वपूर्ण बनी रही तथा आज भी है, किन्तु पारस्परिक कलह, मुगलों के शासन और इसके बाद अंग्रेजों के शासन काल के कारण इसमें अनेक विकृतियाँ उत्पन्न हुई। इसके परिणामस्वरूप इसके प्रभाव में कमी उत्पन्न हुई।

भारत में पारस्परिक कलह के कारण मुगलों को अपना शासन स्थापित करने में सफलता मिली तथा भारतीय संस्कृति में धार्मिक कट्टरता, पर्दा प्रथा, बाल विवाह आदि विकृतियों का जन्म एवं विकास हुआ। भारतीय राजाओं और नवाबों की पारस्परिक कलह के कारण ही अंग्रेजों को भारत में कदम जमाने और अपना शासन स्थापित करने में सफलता मिली। अंग्रेजी शासन काल में औद्योगीकरण, नगरीकरण, यातायात और दूरसंचार के साधनों का विकास हुआ, भौतिकवादी और व्यक्तिवादी विचारधारा एवं धन के महत्व में वृद्धि हुई, धर्म के महत्व में कमी आई एवं इसका व्यावसायीकरण हुआ, समाजवाद और प्रजातंत्र का जन्म हुआ तथा पाश्चात् शिक्षा और संस्कृति ने सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति को प्रभावित किया।

भारतीय संस्कृति अभौतिक अथवा आध्यात्मिक मूल्यों पर आधारित है। इसमें धैर्य, क्षमा, काम और क्रोध पर नियन्त्रण, अस्तेय, शुचिता, इन्द्रिय निग्रह, धी, विद्या, सत्य, अक्रोध आदि पर बल दिया गया है। इसके विपरीत पाश्चात्य संस्कृति का आधार व्यक्तिवादी तथा भौतिकवादी है। भारतीय संस्कृति में प्रकृति (जीव–जन्तु, पेड़–पौधे, नदियाँ–सागर आदि) को देवी–देवता माना गया है तथा इनकी आराधना की गई है। इसके विपरीत पाश्चात्य संस्कृति में इन्हें नियन्त्रित करने पर बल दिया गया है। पाश्चात्य संस्कृति अनेक अर्थो में भारतीय संस्कृति की विरोधी है।

अंग्रेजी शासनकाल में पाश्चात्य संस्कृति की जड़े बहुत गहरी हुई, भारत की आजादी के बाद जवाहर लाल नेहरू प्रधानमंत्री बने। नेहरू जी की शिक्षा–दीक्षा इग्लैण्ड में हुई थी तथा वे पाश्चात्य संस्कृति से बहुत प्रभावित थे, अतः उन्होंने भारत के विकास के लिये भारती सांस्कृतिक मॉडल के स्थान पर पाश्चात्य सांस्कृतिक मॉडल को अपनाया। अभी तक भारत में इसी मॉडल के आधार पर विकास कार्य हुए हैं। इससे विकास कम हुआ है, विकृतियाँ अधिक उत्पन्न हुई हैं। अशिक्षा, बेरोजगारी, निर्धन और धनी के मध्य अन्तर का विस्तार, कालाधन, भ्रष्टाचार, विभिन्न प्रकार के अपराधों आदि में वृद्धि इसी का दुष्परिणाम है।

अब आइये, भारतीय सांस्कृतिक परिवेश में नारी सशक्तिकरण की चर्चा की जाये।

भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल में नारी को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। उसने कैकेई के समान महाराज दशरथ के कंधे से कंधा मिलाकर युद्ध भूमि में युद्ध किया एवं गार्गी के समान वेदों के ज्ञाता पंडितों सें शास्त्रार्थ किया। भारतीय नारी के सम्बन्ध में विद्वानों का मत था कि ''यत्र नारियास्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।''[3]

भारत में नारी को अपना पति चुनने का पूरा अधिकार था। स्वयंवर आयोजित किये जाते थे। इनमे विवाह के इच्छुक पुरूष आते थे। नारी अपने हाथों में वरमाला लेकर उनके समक्ष पहुँचती थी और अपनी पसन्द के वर का चयन करती थी। इतना ही नहीं कभी–कभी तो पुरूष को परीक्षा भी देनी पड़ती थी। राम को शिव धनुष तोड़ने के बाद सीता मिली थी। इसी प्रकार अर्जुन को पत्नी प्राप्त करने के लिये पानी में मछली की परछाई देखकर उसकी आँख का निशाना लगाना पड़ा था। इसी प्रकार के अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं।

भारत में नारी को सामाजिक दृष्टि के साथ ही धार्मिक दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण समझा जाता था। भगवान शिव को अर्धनारीश्वर कहा गया है। ज्ञान की देवी सरस्वती हैं तो धन की देवी लक्ष्मी। दुर्गा, चण्डी, काली आदि शक्ति की प्रतीक हैं, जिन्हें त्रिदेव भी शीश झुकाते हैं। भारत में सभी महत्वपूर्ण धार्मिक अनुष्ठानों में पत्नी की उपस्थिति अनिवार्य थी। सीता की अनुपस्थिति में यज्ञ के समय राम को उनकी सोने की प्रतिमा बनवानी पडी थी।

भारतीय नारी की यह सम्मानजनक स्थिति लम्बे समय तक बनी रही। वर्ण व्यवस्था के जाति व्यवस्था में परिवर्तित होने के बाद नारी की स्थिति में गिरावट आरम्भ हुई। इसके बाद जैन धर्म और बौद्ध धर्म के जन्म के बाद यह गिरावट और बढ़ी। भारत में मुसलमानों के आक्रमण और उनके शासन काल में यह गिरावट अपने चरम पर पहुँच गई तथा बाल विवाह, दहेज, कन्या भ्रूण हत्या, पर्दाप्रथा, बेमेल विवाह, सती प्रथा आदि सामाजिक कुरीतियाँ अपने चरम पर पहुँच गई। अंग्रेजी शासन काल में भी ये घटने के स्थान पर बढ़ी, यद्यपि अंग्रेजों ने इनमें कुछ कुरीतियों को दूर करने के प्रयास अवश्य किये।

Copyright © 2017 Published by kaav publications. All rights reserved www.kaavpublications.org

नरी की स्थिति को देखते हुए राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त को लिखना पड़ा – ''अबला जीवन हाथ तुम्हारी यही कहानी। आँचल में है दूध और आँखों में पानी।''[4]

भारत की आजादी के बाद नारी की स्थिति में सुधार हेतु कानून तो बहुत बने, किन्तु इनका सही ढंग से गंभीरता के साथ पालन नहीं कराया गया। इसके परिणामस्वरूप भ्रूणहत्या, वेश्यावृत्ति, अपहरण, बलात्कार जैसे अपराधों में तेजी से वृद्धि हुई। इस स्थिति के लिए कुछ सीमा तक नारी भी उत्तरदायी थी। भारत के राष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा ने 18 जनवरी 1989 को कानपुर के जुहारी देवी गर्ल्स पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज के रजत जयन्ती समारोह में कहा था – ''नारी जब तक समाज में समानता के आधार पर अपनी सक्रिय भागीदारी नहीं निभाएँगी तब तक वह अपने ऊपर थोपी गई सामन्ती धारणाओं को नहीं बदल सकेगी।''[5]

डॉ. शर्मा नारी शक्ति से परिचित थे। उन्होंने 5 दिसम्बर 1989 को कमला नेहरू महाविद्यालय के रजत जयन्ती समारोह में कहा था, ''आज हमारे समाज के सामने अनेक गंभीर चुनौतियाँ हैं, अनेक गंभीर समस्याएँ हैं। मेरी दृष्टि मे उन समस्याओं के समाधान का काम महिलाएँ पुरूषों से अधिक कर सकती हैं, क्योंकि जब महिलाएँ किसी मूल्य के लिए खड़ी होती हैं या किसी उद्देश्य के लिए लड़ती हैं, तब उसका जबरदस्त नैतिक प्रभाव पड़ता हैं।''[6]

इक्कीवसी सदी के आरंभ में नारी की स्थिति में सुधार के प्रयासों को तीव्र गति मिली, केन्द्रीय और राज्य सरकारों ने महिला आयोगों का गठन किया, नारी के पक्ष में अनेक प्रभावशाली कानून बने, धरने–प्रदर्शन आरंभ हुए, अनेक स्वयं सेवी संगठन और नारी संगठन सड़कों पर उतरे तथा समाज को 'निर्भया काण्ड' जैसी घटनाओं ने झकझोर दिया। नारी सशक्तिकरण के उद्देश्य से लेखकों और साहित्यकारों ने भी कलम के माध्यम से आवाज बुलंद की, टेलीविजन चेनलों ने भी भरपूर साथ दिया। इससे पूरे भारत में नारी सशक्तिकरण के प्रति जागरुकता उत्पन्न हुई तथा पंचायत से लेकर संसद तक में महिला आरक्षण की माँग उठने लगी। इस समय कुछ महिला साहित्यकारों ने बड़े आक्रामक एवं उग्र तेवर भी दिखाये। उन्होंने खुलकर कहा – ''नारी तुम शिक्षित हो, आगे बढ़ो पर इतनी महत्वाकांक्षी मत बनों कि स्वयं ही अपने को इन पापियों को समर्पित कर दो। यहाँ अपने मन का कानून चलने दो, अपने को कठोर बनाओं, विरोध करो। इस घृणित प्रवृत्ति का स्वयं सुरक्षा कवच बनो। ये पुरुष, ये पुलिस, ये नेता, समाज के ठेकेदार, परिवार के स्वार्थी व्यक्ति तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकते।''[7]

नारी सशक्तिकरण के लिए किए जाने वाले उद्देश्यपूर्ण प्रयासों के शीघ्र ही सकारात्मक परिणाम आने लगे। शिक्षण संस्थानों में लड़कियों की संख्या तेजी से बढ़ी, शिक्षा, चिकित्सा आदि से लेकर पुलिस, प्रशासनिक सेवा तक में नारी बड़े–बड़े महत्वपूर्ण पदों तक जा पहुँची, जीवन साथी के चयन में उसकी इच्छा का महत्व बढ़ा। इससे सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्र में नारी सशक्तिकरण हुआ नारी सशक्तिकरण के कुछ दुष्परिणाम भी सामने आये। इनमें विवाह–विच्छेद, पति–पत्नि का अलग रहना, लिव इन रिलेशनशिप, वृद्ध जनों की दुर्दशा आदि प्रमुख है। इन्हें नैतिकताविहीन नारी सशक्तिकरण का दुष्परिणाम माना जा सकता है। दूरदर्शी नेता एवं राष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा ने पहले ही इसक आशंका व्यक्त की थी – ''हमारी आधुनिकता की जड़ें हमारी परम्परा के समृद्ध तत्वों में हैं, तभी हमारा वर्तमान रसयुक्त हो सकता है। अन्यथा ऊपर से लादी गई यह आधुनिकता पारस्परिक एवं सामाजिक सम्बन्धों के बिखराव का कारण बन जाएगी। इस बिखराव के चिन्ह समाज में दिखाई पडने लगे हैं। हमें इस ओर सतर्कता बरतने की आवश्यकता है। कहीं ऐसा न हो कि नारी स्वातंत्र्य (विमेन लिब्रेशन) अपने आप में ही एक नया बंधन बन जाए।''8

नारी सशक्तिकरण वर्तमान समय की आवश्यकता है। सबका साथ सबका विकास तभी सम्भव है, जब देश के सभी धर्मों, सभी जातियों के स्त्री, पुरुष क्रियाशील और सक्षम हों। यह केवल नैतिकतायुक्त नारी सशक्तिकरण से ही संभव है। मेरा विश्वास है कि भारतीय संस्कृतिको सुरक्षित बनाए रखते हुए भी नारी सशक्तिकरण का उद्देश्य प्राप्त किया जा सकता है। इसके लिए निम्न प्रयास आवश्यक है।

1. शक्ति से अहंकार उत्पन्न होता है और अहंकार व्यक्ति को पथभ्रष्ट कर देता है। यह शक्ति सामाजिक शक्ति हो, आर्थिक शक्ति हो अथवा राजनैतिक या शारीरिक शक्ति। नारी सशक्तिकरण के लिए ये सभी शक्तियाँ नारी को प्रदान करना आवश्यक है तथा इन सभी शक्तियों को नियन्त्रित करने के लिए नैतिक शक्ति आवश्यक है।
2. शिक्षा में सभी समस्याओं का समाधान निहित है। यहाँ पर शिक्षा को विस्त्रत अर्थ में लिया जाना चाहिये। विस्त्रत अर्थ में शिक्षा व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करती है। इसके अंतर्गत व्यक्ति के मानसिक विकास और शारीरिक विकास के साथ ही नैतिक विकास भी आ जाता है, अतः नारी सशक्तिकरण के लिये शिक्षा आवश्यक है।
3. नैतिक विकास के लिए नैतिक शिक्षा आवश्यक है। इसमें बाल साहित्य महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है। सामान्यतः बाल साहित्य में स्वस्थ मनोरंजन और नैतिक शिक्षा होती है तथा इसकी प्रस्तुति इस प्रकार से की जाती है कि यह प्रभावशाली बन जाता है। नारी सशक्तिकरण हेतु इस पर विशेश ध्यान दिया जाना चाहिए तथा बाल साहित्य को कक्षा एक से परास्नातक तक अनिवार्य कर देना चाहिये। इससे नारी का नैतिक सशक्तिकरण होगा।
4. नैतिक सशक्तिकरण के साथ ही नारी में राष्ट्रभक्ति और देशप्रेम की भावना भी आवश्यक है। इस कार्य में भारतीय संस्कृति, भारतीय महानायकों और भारतीय वीरांगनाओं का परिचय सहयोगी सिद्ध हो सकता है। इन सभी को बाल साहित्य के पाठ्क्रमों में सम्मिलितकिया जाना चाहिये।
5. नारी के सशक्तिकरण के लिये और उसे आत्मनिर्भर बनाने के लिये आर्थिक सशक्तिकरण आवश्यक हैं। इसके लिये नारी को सेवा और रोजगार के अवसर प्रदान किये जाने चाहिये। रोजगार देनेवाले रोजगार इसमें अधिक उपयोगी होंगे। इनसे नारी सशक्तिकरण के साथ ही नारी एकता का भी विकास होगा।

Copyright © 2017 Published by kaav publications. All rights reserved www.kaavpublications.org

6. नारी के सशक्तिकरण हेतु नारी का राजनैतिक सशक्तिकरण भी अत्यंत आवश्यक है। इसके लिये पंचायत से लेकर संसद तक में आरक्षण व्यवस्था होनी चाहिये, किन्तु यह आरक्षण जाति अथवा धर्म के आधार पर नहीं होना चाहिए। जातिगत आरक्षण नारी में हीनता की भावना उत्पन्न कर सकता है।
7. नारी सशक्तिकरण एक प्रक्रिया है। इसे पुरुश विरोधी प्रक्रिया के रूप में नही देखना चाहिये। नारी और पुरुष को एक दूसरे का सहयोगी समझा जाना चाहिये तथा दोनों को एक दूसरे के विकास में सहयोग करना चाहिये। इस प्रकार इस प्रक्रिया को हम नारी, समाज और राष्ट्र के विकास की एक सकारात्मक प्रक्रिया का रूप दे सकते हैं।

संदर्भ

- परशुराम शुक्ल, परिचयात्मक समाजशास्त्र, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर (राज.), 2007, पृष्ठ – 252
- परशुराम शुक्ल, भारतीय समाज और जाति व्यवस्था, आविष्कार पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर (राज.), 2012, पृष्ठ – 12,13
- मनु, मनुस्मृति
- मैथिलीशरण गुप्त, साकेत
- शंकर दयाल शर्मा, मंजूषा, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 1996, पृष्ठ – 39
- शंकर दयाल शर्मा, मंजूषा, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 1996, पृष्ठ – 39,40
- ऊर्मि शर्मा, नारीः बहुरूपा, अनंग प्रकाशन, दिल्ली, 2002, पृष्ठ – 13
- शंकर दयाल शर्मा, मंजूषा, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2002, पृष्ठ – 40

Copyright © 2017 Published by kaav publications. All rights reserved www.kaavpublications.org